५१: धर्मनीति का आधार

दिनांक -१८/०१/२०१२

तन, मन, धन रुपी अर्थ का सदुपयोग हेतु व्यवस्था जो मानव संस्कृति, सभ्यता के रूप में प्रमाणित होता है | संस्कृति अखण्ड समाज के रूप में, सभ्यता व्यवस्था के अर्थ में वैभवित होता है | यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का महिमा है | अखण्ड समाज अपने में समझदारी का अभिव्यक्ति है अथवा सर्वतोमुखी समाधान का अभिव्यक्ति है | यही अभ्युदय है | इस क्रम में हर नर-नारी अर्थात हर मानव अपना वैभव को प्रमाणित करना सहज है | सर्व मानव का वैभव केवल समझदारी है | समझदारी का स्वरूप मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना के रूप में पहचाना गया है, परखा गया है, जीकर देखा गया है | फलस्वरूप सुख, शांति ; सुख, शांति, संतोष; सुख, शांति, संतोष, आनंद के साथ जीना बन गया | इसी के साथ यह भी समझ में आया कि विकसित चेतना के आधार पर जीना ही समझदारी पूर्वक जीना, सुख, शांतिपूर्वक जीना है | इसी के साथ समृद्धि, श्रम के आधार पर प्रमाणित होना देखा गया | इसे जीकर, समझकर, समझाकर देखा गया है | मानव को यह स्वीकार होता है | इस आधार पर या समझदारी के आधार पर समाधान, समृद्धि बहुतायत परिवारों में घटित होना ही अभयता का परंपरा स्वरूप है | मानव में शंका, कुशंका, मतभेद का आधार भ्रम ही है | यही शंका, कुशंका ही भय के रूप में प्रेषण करता है |

सर्वमानव सुख, सहमतिपूर्वक जीना ही चाहता है | यही मुख्य धारा है | दूसरी भाषा में अखण्ड समाज ही मुख्य धारा है | यही सार्वभौम व्यवस्था है | अखण्ड समाज के साथ अखण्ड राष्ट्र का ज्ञान होना सहज है | धरती एक राष्ट्र होना ही अखण्डराष्ट्र है | धरती विभाजित नहीं होता है | इस पर विश्वास कर सकते हैं | स्वस्थ धरती का स्वरूप समृद्ध खनिज और वनस्पति संसार का संयुक्त रूप में धरती संतुलित रहने का प्रमाण ऋतु संतुलन के रूप में होता है | इसको बनाये रखने वाला और बिगाड़ने वाला केवल मानव है | मानव के अलावा और कोई वस्तु इसे बिगाड़ने का काम नहीं करता | हर मानव अपने आवश्यकता को पहचानने की व्यवस्था है | इसी क्रम में संसार का आवश्यकता को उपयोगिता, पूरकता व प्रयोजनीयता के रूप में पहचानने की व्यवस्था है | यह हर व्यक्ति के अधिकार की बात है | क्षमता, योग्यता, पात्रता में से पात्रता, योग्यता का धारक-वाहक परम्परा ही है | परम्परागत विधि से पात्रता निर्मित होती है | उसी के फलस्वरूप अभिव्यक्ति में योग्यता प्रकट होती है | मूल में परम्परा ही मुख्य कारण है | परम्परा यदि जागृत चेतना विधि से अनुप्राणित रहेगा अथवा प्रमाणित रहेगा तभी परम्परा बनेगा | जब तक यह नहीं होगा तब तक नर-नारी में असमानता, गरीबी-अमीरी में असंतुलन बना ही रहेगा | इस झंझट से मुक्ति पाने के लिये चेतना विकास ही एकमात्र शरण है |

चेतना विकास मूल्य शिक्षा इसलिए आवश्यक हो जाता है कि मानव, जीव चेतना में जीते जीते जो कुछ सोच पाया, कर पाया उसके फल परिणाम में धरती बीमार हो गयी | धरती बीमार होने की स्थिति में आगे पीढी कहाँ रहेगी, यह प्रश्न आता ही है | अभी तक जितने भी प्रयोग हुए हैं जैसे स्पेस में अर्थात विस्तार में गांव बसना, मंगल ग्रह पर मानव को ले जाना, चन्द्रमा पर मानव को ले जाना इत्यादि | यह सब किया हुआ कार्य व्यवहार बुद्धि से ठीक लगता है | इस क्रम में मानव अपने हताशा में हताहत होना स्वाभाविक है | आशा ही हत होने के बाद मानव जियेगा कैसे? इसलिए चेतना विकास मूल्य शिक्षा का प्रस्ताव है | मानव जात समझदारी के साथ ही जीना चाहता है | किसी आयु के बाद हर मानव अपने को समझदार मानता ही है | इसी गवाही से मानव समझदारी के साथ जीने का बात पुष्ट होता है | इसी विधि से हर व्यक्ति को समझदार बनाने की

आवश्यकता बन जाता है | इस विधि से शिक्षा में समझदारी को अपनाना आवश्यक हो गया है | समझदारी केवल विकल्प रूप में ही प्रस्तावित है | इसी क्रम में यह भी पता लगता है कि अभी तक मानव जीव चेतना में ही जिया है | जीव चेतना में जीते हुए, जीवों से अच्छा जिया है | यह पता लगने से मानव चेतना में जीने की इच्छा होना स्वाभाविक है, क्योंकि हर मानव श्रेष्ठता को वरता ही है अथवा श्रेष्ठता का सम्मान करता ही है | इसी विधि से शिक्षापूर्वक चेतना विकास मूल्य शिक्षा का लोकव्यापीकरण करना हमारी एक आवश्यकता हो गय है | ऐसी व्यवस्था मानव कुल में ही वैभवित होना, प्रभावित होना, प्रमाणित होना स्वाभाविक हो गया है |

सर्वशुभ हो! जय हो! मंगल हो! कल्याण हो!

- ए. नागराज | प्रणेता एवं लेखक - मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) | भजनाश्रम, अमरकंटक, जिला-अनूपपुर (म. प्र.)